शिक्षा और सामाजिक स्तरीकरणः एक परिचय

अमन मदान

व्यक्ति की सामाजिक हैसियत उसके जीवन में बहुत से अवसरों को मुमकिन बनाती है और बहुतों को नामुमकिन। शिक्षा के अवसर भी इससे अछूते नहीं हैं। धर्म, जाति, वर्ग एवं लिंग के आधार पर बंटे समाज में बहुतों को शिक्षा के समुचित अवसर नहीं मिल पाते। यह लेख सामाजिक स्तरीकरण और शिक्षा पर इसके प्रभावों की छानबीन करता है। साथ ही कहता है सामाजिक स्तरीकरण की जड़ें गहरी होने के बावजूद स्थायी नहीं हैं। उचित नीतियों के जरिए इनमें बदलाव लाया जा सकता है।

शिक्षा में एक बड़ा अहम् मसला यह है कि ऐसा क्यों होता है कि कुछ ही लोगों को अच्छी शिक्षा मिल पाती है और बहुत से लोग इससे महरूम रह जाते हैं। भारत में शायद 20-22 प्रतिशत ही नौजवान कॉलेज जा पाते हैं और अधिकांश उससे पहले ही किसी न किसी पड़ाव पर रुक जाते हैं। इस लेख के कई पाठक शायद शिक्षा में इसलिए रुचि रखते होंगे क्योंकि वह आम इंसान को अवसर देने का एक जरिया है। हम यह आशा लेकर चले हैं कि शिक्षा द्वारा एक ऐसा भारत और ऐसा विश्व बना सकते हैं जहां सभी को इज्जत की रोटी मिल सकेगी और जहां कोई भूखा नहीं मरेगा और न ही इसलिए दम तोड़ेगा क्योंकि उसके पास इलाज के लिए पैसे नहीं थे। मगर आजादी के इतने साल बाद भी हम एक ठीक-ठाक किस्म की शिक्षा सिर्फ थोड़े से लोगों को ही दिला पाए हैं। अब यह लगता है कि शिक्षा का सुधार उसके ऊपरी स्तर पर कुछ छेड़छाड़ करके नहीं होगा। कई समाजशास्त्री यह कोशिश करते हैं कि समस्या के मूल कारणों तक पहुंचा जाए ताकि उसका जड़ों से इलाज किया जा सके।

समस्या सरल तो नहीं है, वरना उसका हल तो कब से मिल गया होता। समाजशास्त्री मानते हैं कि शिक्षा समाज की स्तरीकरण व्यवस्था से जुड़ी होती है। स्तरीकरण शब्द तो शायद स्कूल के समय के भूगोल से याद होगा, जब पढ़ा था कि भूमि के कई स्तर होते हैं, एक के ऊपर एक। समाजशास्त्र में भी कुछ इसी तरह

के अर्थ का प्रयोग होता है, जहां यह देखा जाता है कि समाजों में कई समूह हैं, जिनमें से कुछ का ओहदा ऊपर होता है और कुछ का नीचे। यह तो जाहिर बात है कि मनुष्य मिट्टी के नहीं बने होते और इस समरूपता को ज्यादा दूर तक नहीं खींचा जा सकता। मगर भारत में, उदाहरण के लिए, वरिष्ठ मैनेजर और बड़ी कंपनियों के मालिकों के पास दूसरों से काफी ज्यादा दौलत और ताकत रहती है। वह एक अलग सामाजिक स्तर बनाते हैं। यह भी हो सकता है कि दो समूह ऐसे हों जिनके पास बराबर के पैसे हों, मगर फिर भी उनको एक समान इज्जत नहीं मिलती हो। उदाहरण के लिए, यह आज भी देखने को मिल सकता है कि एक ही महकमे में काम करने वाले दो पड़ोसी हैं मगर उनमें से जो दलित है उसे सवर्ण पड़ोसी के घर के बाहर वाले हिस्से से भीतर नहीं बुलाया जाता। एक स्तरीकृत व्यवस्था में समाज के विभिन्न समूहों को जीवन में अलग-अलग किस्म के संयोग मिलते हैं, जिसका असर यह होता है कि कुछ को बाकियों से ज्यादा अच्छे मौके, साधन, सत्ता, इज्जत और जीवनयापन की गुणवत्ता मिलती है। सामाजिक स्तरीकरण व्यवस्थाओं का शिक्षा पर काफी प्रभाव पड़ता है। अगर हम चाहते हैं कि शिक्षा उन समूहों तक पहुंचे जो कि उससे वंचित हैं, तो हमें इन व्यवस्थाओं को समझना पड़ेगा।

व्यक्तिगत फर्क और सामाजिक स्तरीकरण में अंतर

यह तो सच है कि एक मायने में सभी लोग एक-दूसरे से अलग हैं। मगर जब हम सामाजिक स्तरीकरण या सामाजिक असमानता की बात करते हैं तो हमारा मतलब कुछ और होता है। एक स्तरीकरण की व्यवस्था समूहों के ऊंच-नीच की स्थिर व्यवस्था होती है, जो कि वहीं की वहीं रहती है, चाहे व्यक्ति बदलते जाएं। उदाहरण के लिए, यह हो सकता है कि एक समूह जमींदारों का हो और दूसरा समूह उनके लिए काम करने वाले खेतिहर मजदूरों का हो। जमींदारों के पास अपने बच्चों को शहर में अंग्रेजी मीडियम स्कूल भेजने के लिए पर्याप्त धन रहता है, मगर मजदूरों के पास नहीं। यह हो सकता है कि पहले समूह में से एक व्यक्ति जुए में अपनी सारी जमीन हार जाए और दूसरे समूह का सदस्य बन जाए। मगर इससे व्यवस्था नहीं बदलती- बिना जमीन वाले लोगों को जमीन वाले लोगों के लिए काम करना ही पड़ता है। जिनके पास जमीन है, ज्यादा मुमकिन है कि उनके बच्चे बिना जमीन वालों के बच्चों की तुलना में अच्छे स्कूल में पढ़ें। यह एक स्तरीकरण की व्यवस्था है और शिक्षा उससे जुड़ी हुई है।

स्तरीकरण और संभावनाएं

जब हम स्तरीकरण और शिक्षा की बात करते हैं तो हम कुछ बड़ी गहरी किस्म की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों की बात कर रहे होते हैं। इसे हम संभावनाओं और अवसरों की भाषा से ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम सिक्का उछालते हैं तो क्या होता है? जैसा कि हम जानते हैं, सिक्कों की एक तरफ अशोक के शेर बने होते हैं, जिसे हम सीधा हिस्सा बोल देते हैं और दूसरी तरफ रकम लिखी होती है, जिसे हम उल्टा हिस्सा कह देते हैं। जब सिक्के को उछालते हैं तो कौनसा हिस्सा नीचे की तरफ आएगा? वह सीधा भी हो सकता है और उल्टा भी। अगर आपको अपनी स्कूल में पढ़ी गणित याद हो तो आपको ध्यान होगा कि एक सिक्के की करीब 50 प्रतिशत संभावना होती है कि वह सीधा गिरे और 50 प्रतिशत संभावना होती है कि वह उल्टा गिरे। यह इसलिए होता है क्योंकि सिक्के के दोनों तरफ के हिस्सों का एक ही वजन होता है। तो कभी सिक्का एक तरफ गिरेगा और कभी दूसरी तरफ। मगर क्योंकि दोनों तरफ का वजन बराबर है, तो अगर आप सौ बार फेंकते हैं तो करीब-करीब पचास बार सीधा गिरेगा और पचास बार उल्टा। लेकिन अगर आप सिक्के को एक तरफ से थोड़ा भारी बना देंगे तो बात बदलनी शुरू हो जाएगी। जुआरी जीतने के लिए कई हथकंडों का इस्तेमाल करते हैं। वे सिक्के की एक तरफ बिना किसी रंग का नेल पॉलिश या वार्निश लगा देते हैं। अब सिक्का एक तरफ से ज्यादा भारी हो जाता है और उछाले जाने पर ज्यादा संभावना होती है कि वह भारी वाला हिस्सा ही नीचे की तरफ गिरेगा। अब सौ बार उछालने पर सिक्का पचास बार सीधा और पचास बार उल्टा नहीं गिरेगा बल्कि हो सकता है कि सत्तर या अस्सी बार सीधा ही गिरे।

भारत में हमारे पास कई तरह की सामाजिक असमानताएं हैं जो कि हमारे जीवन के सिक्के की उछाल में एक तरफ ज्यादा वजन चढ़ा देती हैं। एक उदाहरण लीजिए, मैंने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 2010-11 के आंकड़ों से देखा कि भारत के नौजवानों में से 19-21 साल की उम्र वाले सिर्फ 24 प्रतिशत ही किसी भी तरह के कॉलेज में अपना नाम लिखाए हुए थे। बाकी 74 प्रतिशत क्यों छूटे हुए थे? स्पष्ट था कि कोई ताकत ऐसी थी जो कि उनके जीवन के सिक्के को दूसरों की तुलना में एक तरफ से भारी बना रही थी जो कि कॉलेज जा रहे थे। कुछ सामाजिक कारण थे जो कि शिक्षा के पासे के फेंके जाने में उनके खिलाफ काम कर रहे थे। सामाजिक स्तरीकरण का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि वे प्रतिकूल परिस्थितियां कौनसी हैं। जब हम उन्हें समझ पाएंगे तो हम उनसे ज्यादा अच्छे तरीके से जूझ पाएंगे।

असमानता के कारणः जीन्स, समाज और व्यक्ति

कुछ छात्रों का पढ़ाई में ज्यादा अच्छा कर पाने के तीन कारण अक्सर दिए जाते हैं- आनुवांशिकता, समाज और व्यक्तिगत गुण जैसे कि इच्छा शक्ति और मेहनत। इनमें फर्क करना उपयोगी होगा। यह आमतौर पर सुनने को मिलता है कि पढ़ाई में अच्छा होना या न होना आनुवांशिकता पर निर्भर करता है। कहा जाता है कि उससे हमारी बुद्धिमत्ता (इंटैलिजेन्स) तय होती है और कुछ लोगों के पास यह दूसरों से ज्यादा होती है। असल में बुद्धिमत्ता पर काफी विवाद है और कई विद्वानों का मानना है कि पढ़ाई पर उसके जीन्स (Genes) का ज्यादा असर सिर्फ कुछ दूरतम स्थितियों में ही पड़ता है, जैसे कि जब किसी बच्चे को डाउन सिन्ड्रोम (Down's Syndrome), इत्यादि हो। यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि रामानुजन और आइंस्टाइन इसलिए जीनियस थे क्योंकि उनके जीन्स ऐसे थे या कि क्योंकि उनका चरित्र, रुचि और उनकी आदतें ऐसी थीं। शिक्षा में उत्तीर्ण होने में ज्यादा बड़ा योगदान होता है व्यक्ति के मेहनती होने का, उसका कर्तव्यनिष्ठ (conscientious) होने का, विषयों में रुचि होने का और अपने-आपको भविष्य में एक खास तरह का जीवनयापन करते हुए देख पाने का।

समाजशास्त्रियों का मानना है कि जीन्स से कहीं ज्यादा योगदान सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था का होता है। अगर भारत के 76 प्रतिशत युवक कॉलेज नहीं जा पाते तो वह इसलिए नहीं है कि उनके जीन्स में कुछ कमी है बल्कि हमारे समाज में कुछ हो रहा है जिसके कारण वे आगे नहीं पढ़ पा रहे हैं।

एक और उदाहरण लें तो सन् 1901-02 में सिर्फ 23007 व्यक्ति ही भारतीय विश्वविद्यालयों में भरती थे (बासु 1981: 14) जबकि 2010-11 में करीब 2,66,91,000 (दो करोड छियासठ लाख इकरानब्वें हजार) व्यक्ति किसी तरह के डिग्री या डिप्लोमा कर रहे थे (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 2012:4)। यह हजार गुना बढ़त जीन्स द्वारा नहीं समझी जा सकती। उनकी जगह हमें नीतियों, आर्थिक विकास, बुनियादी सुविधाओं के बारे में सोचना पड़ेगा, यानी सामाजिक प्रक्रियाओं के बारे में।

स्कूल की पढ़ाई में व्यक्तिगत मेहनत, लगन और प्रेरणा का भी बड़ा योगदान रहता है। याद रखिए, आइंस्टाइन विद्यालय में बड़े सुस्त छात्र माने जाते थे। लेकिन जब उन्होंने अपने सबसे विख्यात शोध किए उन दिनों वे दिन-रात मेहनत कर रहे थे। शिक्षा की उपलब्धियों में व्यक्तिगत शख्सियत और मेहनत का काफी बड़ा योगदान रहता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन गुणों को सामाजिक परिस्थितियां काफी हद तक प्रभावित करती हैं।

उदाहरण के लिए, हो सकता है कि एक गरीब खेतिहर मजदूर की बेटी ने अपने परिवार या अपने अड़ोस-पड़ोस में कभी किसी को नहीं देखा हो जो पढ़ा-लिखा हो और पढ़ाई के कारण जिसकी नौकरी लग पाई हो। उसके उलट हो सकता है कि वह यही सुनती आ रही हो कि स्कूल की पढ़ाई का कोई फायदा नहीं होता और उससे तो अच्छा कुछ और कर ले। यह उसके गांव की परिस्थितियों का बड़ा यथार्थवादी आकलन हो सकता है, अगर हजारों अन्य गांवों की तरह भारत का विकास उसे भी छोड़कर कहीं और बढ़ गया हो। ऐसी परिस्थितियों में बहुत कम बच्चे मिलेंगे जिन में फिर भी यह इच्छा दिखेगी कि वे पढ़ाई में खूब मेहनत करें और शिक्षा के रास्ते अपना एक कैरियर बनाएं। हां,

ऐसे थोड़े से बच्चे तो मिलेंगे, मगर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे बहुत कम होते हैं। सामाजिक असमानताओं का शिक्षा से संबंध सबसे अच्छी तरह से समझने के लिए व्यक्तिगत गुणों को सामाजिक ढांचे के साथ जोड़कर समझने की जरूरत है। इसमें आनुवांशिक (जेनेटिक) कारणों के लिए बहुत ज्यादा गुंजाइश नहीं दिखती।

विभिन्न तरह के समाजों में सामाजिक स्तरीकरण

एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि आखिर सामाजिक असमानता क्यों होती है और क्या इससे बचा नहीं जा सकता? कुछ कहते हैं यह हमारी प्राकृतिक बनावट के कारण है और कुछ कि यह ईश्वर की इच्छा है। अलग-अलग तरह के समाजों में सामाजिक स्तरीकरण को देखकर इस सवाल के कुछ जवाब मिलने शुरू होते हैं।

सामाजिक विज्ञान यह नहीं मानता कि अगर ईश्वर है भी तो उसने हमें पृथ्वी पर इसी रूप में भेजा। हम नरवानरों (primates) से विकसित हुए हैं, जो कि आधुनिक बंदर और वनमानव जैसे लगते थे। मानवविज्ञानियों (anthropologists) और जीव वैज्ञानिक हमारे आज के स्वरूप को होमो सेपियन्स (homo sapiens) के नाम से बुलाते हैं और यह पृथ्वी पर करीब एक लाख साल से हैं। उन एक लाख सालों में से अधिकांश सालों के लिए हम काफी अलग किस्म के सामाजिक ढांचे में रहे थे, जिसमें असमानताएं आज के मुकाबले में बहुत कम थीं।

हमारी प्रजाति (species) का अधिकांश इतिहास शिकार और बटोर करने वाले गुटों में बीता है। यह करीब 50-100 लोगों के समूह होते थे जो कि एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे। इनकी जरूरतें बहुत कम थीं और अपने आसपास के जंगली पौधों और जानवरों से पूरी हो जाती थीं। जानवरों और फसलों का पालन तो हमारी प्रजाति के जीवन में बहुत बाद आया है, करीब 10-12 हजार साल पहले। उससे पहले हम उन छोटे-छोटे समूहों में रहते थे जो कि फल और जड़ें इत्यादि बटोर कर खाते थे और जब मौका मिलता था तो जानवरों का भी शिकार कर लेते थे। कहीं-कहीं इस तरह के लोग आज भी मिल जाते हैं और उनका अध्ययन किया गया है। इनमें आधुनिक भारत की विशाल असमानताओं जैसा कुछ भी नहीं दिखता। शिकार और बटोर करने वाले लोग अपने कबीले के अंदर के सामाजिक समूहों में भेदभाव नहीं करते थे। सभी को एक ही तरह का भोजन और पहनावा मिलता था। किसी को अपना पद पैदाइश से नहीं मिलता था। ऊंचा ओहदा अपनी मेहनत और कुशलता से कमाना पड़ता था। जैसे कि एक अच्छा तीरंदाज कहलाने के किए खूब मेहनत करनी पड़ती। इससे कोई पैदाइशी जाति या वर्ग भी नहीं बनते, जैसे कि अच्छे तीरंदाजों का गोत्र जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी इस नाम का फल उठाता चला जाए।

मुख्यतः असमानताएं उम्र पर आधारित रहतीं और छोटों, बड़ों और वृद्धों के साथ अलग किस्म का व्यवहार होता था। स्त्री और पुरुष में भी अंतर था, मगर निर्णय लेने में अक्सर दोनों ही शामिल होते थे। ज्यादा फर्क आदमी और औरत में वहां आता था जहां आसपास शिकार के जानवर नहीं मिलते। उधर आदमी थे जो कि दूर-दराज जाकर जानवरों का शिकार करके लाते थे। मगर इन परिस्थितियों में भी औरतें अक्सर पौधों की उपज इकट्ठा करके भोजन में मांस से ज्यादा योगदान करती थीं और शिकार करने की क्षमता से उनके सामाजिक ओहदे पर ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे समूहों में कोई अलग गुरुकुल या विद्यालय नहीं होते थे और बच्चे अपने बड़ों को और एक-दूसरे को देखकर, नकल करके सीखते थे। ऐसे छोटे समूहों में सवाल ही नहीं उठता था कि कुछ बच्चों को ही सीखने का अवसर मिले और दूसरों को नहीं।

एक इलाके में ऐसे कई समूह मिल जाते थे। वे समूह हो सकता था कि एक-दूसरे के साथ बिना झगड़े रहते थे या फिर झगड़ा भी हो सकता था, खास तौर पर मुश्किल से मिलने वाले साधनों के लिए लेकिन इन सब समूहों की मिलकर एक स्थिर स्तरीकरण व्यवस्था नहीं बनती थी। एक-दूसरे की तुलना में सभी कबीले अपने-आपको बाकियों के बराबर मानते थे और एक ऊंच-नीच की स्थायी व्यवस्था नहीं थी। न ही उनको जीवनयापन के लिए एक-दूसरे की आवश्यकता रहती थी।

नियमित और स्थिर सामाजिक असमानता का एक शुरुआती स्वरूप दास प्रथा में दिखता है। एक समूह दूसरे पर हमला करके उसके कुछ सदस्यों को बंदी बना लेता और उनसे जबरदस्ती काम करवाता। समाज में दास एक निचला स्तर बनाते और उन पर कई किस्म के बंधन होते। उन्हें पकड़े रखने और उनसे काम करवाने के लिए उन पर हिंसा का प्रयोग करना आम बात थी। दास प्रथा भारतीय उप-महाद्वीप और बाकी दुनिया के कई समाजों में मिलती थी और कुछ समाजों का तो इसके बिना बसर ही नहीं हो सकता था। एथेन्स जैसे शहरों में खेती और मजदूरी दास ही करते थे। औरतों को विश्व भर में विशेष रूप से दास बनाया जाता था और उनसे खास किस्म के काम करवाए जाते। शायद बाद के सालों में स्त्री और पुरुष में जो सामाजिक फर्क उठे उनकी जड़ें दास प्रथा में ही हैं।

सदी दर सदी ज्यादा विस्तृत किस्म के सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूप उभरे। यह अक्सर इसलिए मुमकिन हुआ क्योंकि खेती के ईजाद से ज्यादा खाद्य पदार्थ पैदा हुए, जो कि सबके खाने के बाद भी अतिरिक्त बचते थे और जिनको इकट्ठा करके एक पूंजी के रूप में रखा जा सकता था। खेती एक ऐसी तकनीक थी जिसने इतना भोजन पैदा कर दिया कि अब सब लोगों को रोज अपने खाने की तलाश में नहीं निकलना पड़ता था। यह इतिहास में नई बात थी क्योंकि शिकार बटोर करने वाले लोगों के पास तो कभी भी इतना अतिरिक्त खाना नहीं होता था और न ही उनके पास खाने को संभाल कर रखने की तकनीक थीं। खेती की शुरुआत होने के बाद यह मुमकिन हो पाया कि कुछ लोग खेती न कर, विशेष किस्म के कार्यों में कुशलता बनाने लगे और बाकी लोग उनका भोजन उपलब्ध कराते थे। फिर यह भी होने लगा कि कुछ लोग सिर्फ खाते थे और हथियारों और अपने लड़ाके साथियों की मदद से बाकियों को मजबूर करते थे कि उनके लिए खेती करें। खेती के ईजाद से असमानता में उछाल आई, हालांकि उसके लिए सिर्फ खेती को ही दोष देना सही नहीं होगा। मगर राजा, महाजन, पुरोहित, यह सब वर्ग खेती और उसके अतिरिक्त उत्पादन के साथ ही विकसित होते हैं।

विश्व के कई हिस्सों में धीरे-धीरे असमानता का एक ढांचा निकला जिसे हम भारत में जाति व्यवस्था के रूप में पहचान सकते हैं और पश्चिमी यूरोप में इस्टेट व्यवस्था के रूप में। इस व्यवस्था में एक समूह के सदस्य एक ही तरह के व्यवसाय और कार्यों में लगते थे और उनके काम के आधार पर उन्हें बाकी समूहों से ऊंचा या नीचा माना जाता था। शादियां आमतौर पर उसी समूह के भीतर ही होती थीं और एक औरत का दूसरे समूह के आदमी के साथ शादी करना आसान नहीं था। इस तरह का स्तरीकरण विश्व के कई हिस्सों में देख सकते हैं, जापान से भारत और यूरोप तक। आज भी जापान में हम इसकी परछाई ऐनु समुदाय में देख सकते हैं जिसे बाकियों द्वारा नीच और अछूत बना दिया गया। मध्यकालीन यूरोप में समाज का बंटवारा तीन मुख्य इस्टेट में किया जाता था, जो कि राजा की बिरादरी, चर्च का पुरोहित वर्ग और सामान्य वर्ग के लोग थे। यह माना जाता था कि सिर्फ राजा की बिरादरी के ही लोगों को शासन करने का दिव्य अधिकार था। शिक्षा के लायक भी सिर्फ राजा और पुरोहित को ज्यादा माना जाता था।

संयुक्त राज्य अमेरिका में दास प्रथा को औपचारिक रूप से 18वीं सदी में खत्म कर दिया गया था और काले रंग के जिन लोगों को जबरदस्ती अफ्रीका से उठाकर यहां बेचा गया था वे नाम से तो आजाद हो गए। मगर असल में उन्हें भी एक जाति जैसे समूह में ही रहना पड़ता था। वे प्रायः कुछ ही व्यवसाय में पाए जाते थे और गोरों और कालों के बीच में विवाह के खिलाफ कई बंधन थे। इसके असर आज भी वहां दिखते हैं और शिक्षा में दासों के वंशज सबसे पीछे हैं। याद रखिए कि ओबामा दासों के परिवार से नहीं, बल्कि केन्या से आए पढ़े-लिखे काले पिता और पीएचडी गोरी मां के पुत्र हैं।

इन समाजों में, जहां जाति, इस्टेट और नस्ल से सामाजिक ढांचा बनता था, शिक्षा ज्यादातर कुछ ही समूहों को मिलती थी। इसमें कई अपवाद अवश्य होते थे, मगर आमतौर पर शिक्षा ऊंचे ओहदे के समूहों को ज्यादा आसानी से मिलती थी। शिक्षा में पढ़ाया क्या जाता था, उसका भी संबंध पैदाइशी पेशे से काफी ज्यादा होता था। निम्न स्तर के व्यक्ति को सामाजिक बंधनों को पार करके ऐसी शिक्षा हासिल कर पाना जो कि उच्च स्तर के लोगों की थी, यह काफी मुश्किल होता था।

समाज और शिक्षा को अलग-अलग खानों में बांटने की रिवायत को कई सामाजिक प्रक्रियाओं ने आघात किया है। इनमें कुछ हैं औद्योगीकरण और पूंजीवाद और दूसरी तरफ सभी इंसानों की समानता और साझी विरासत में यकीन रखने वाली विचारधाराएं और सांस्कृतिक मान्यताएं। चाहे इतिहास में अलग-अलग समाजों की कुछ भी रिवायत हुई होगी, आजकल यह आम माना जाता है कि व्यक्ति की शिक्षा उसके वंश से नहीं, बल्कि उसकी अपनी मेहनत और रुचि पर आधारित होनी चाहिए।

इस ऐतिहासिक परिवर्तन का एक मील पत्थर था 1989 की फ्रांसीसी क्रांति, जिसने पारिवारिक धरोहर पर आधारित अधिकारों को उखाड़ फेंका, कि सिर्फ राज घराने या चर्च के सदस्यों को ही जीवन की अच्छी चीजों का हक नहीं है। हालांकि फ्रांसीसी क्रांति जल्द ही नेपोलियन बोनापार्ट जैसे तानाशाह के हाथ में चली गई, फिर भी वह आधुनिक युग का पहला व्यक्ति था जिसने ऐसी राष्ट्रीय स्तर की उच्च शैक्षणिक संस्थाएं बनाईं जो कि औपचारिक रूप से हर नागरिक के लिए खुली थीं। इनके साथ एक नारा जुड़ा कि शिक्षा और कैरियर योग्यता पर आधारित होने चाहिएं, जन्म पर नहीं।

ज्यादातर आधुनिक समाज आज कल कम से कम कानूनी रूप से तो जाति और इस्टेट वाली सामाजिक स्तरीकरण के खिलाफ हैं। कई स्त्री और पुरुष के प्रचलित कामों के विभाजन पर भी सवाल उठाते हैं लेकिन ऐसा नहीं है कि सामाजिक स्तरीकरण गायब हो गया है। शायद उसने अपना रूप बदल लिया है, एक वर्ग आधारित सामाजिक असमानता में, जिसे देखना और पहचानना उतना आसान नहीं है। पुरानी तरह के स्तरीकरणों ने अपनी कानूनी पहचान तो खो दी है, लेकिन फिर भी कई तरीकों से वे भी अभी जिन्दा हैं। आज के दौर में कई तरह के सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्थाएं आपस में मिला-जुला असर शिक्षा पर दिखाती हैं। अगले अंकों में हम इनमें से तीन वर्ग, जाति और लिंग का शिक्षा के अर्थ और परिणाम से संबंध को समझने की कोशिश करेंगे। ◆

संदर्भ

Basu, A. (1981). *Essays in the history of Indian education*. New Delhi: Concept Publishing Company.

MHRD. (2012). *Educational Statistics at a Glance*. New Delhi: Ministry of Human Resource Development.

Further Reading:

Aikara, J. (2004). Education and Social Stratification. In *Education: Sociological Perspective* (pp. 25–52). Jaipur and New Delhi: Rawat.

Schlinger, H. D. (2003). The myth of intelligence. *The Psychological Record*, *53*(1), 15–32.

Scupin, R., & DeCorse, C. R. (2004). Agricultural States. In *Anthropology: a global perspective* (5th ed., pp. 450–471). New Delhi: Prentice-Hall.

Band Societies. In *Anthropology: a global perspective* (5th ed., pp. 372–396). New Delhi: Prentice-Hall.

Industrial States. In *Anthropology: a global perspective* (5th ed., pp. 472–507). New Delhi: Prentice-Hall.

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।